Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
July to September 2025, E-Journal, Vol. I, Issue LI (51), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

श्रीमद्भगवद्गीता में योग

इन्दु पटेल* प्रो. वेदप्रकाश मिश्र**

* शोध छात्रा (संस्कृत एवं प्राच्य भाषा विभाग) डॉ. सी. व्ही. रमन विश्वविद्यालय करगी रोड, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.) भारत
** शोध निर्देशक (संस्कृत एवं प्राच्य भाषा विभाग) डॉ. सी. व्ही. रमन विश्वविद्यालय करगी रोड, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.) भारत

शोध सारांश – गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यै: शास्त्रसंग्रहै:।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनि:सृता।।[1]

वाराहपुराण में कहा गया है कि 'मैं गीता के आश्रय में रहता हूँ गीता मेरा श्रेष्ठ घर है। गीता के ज्ञान का सहारा लेकर ही मैं तीनों लोकों का पालन करता हूँ'।श्रीमद्भगवद्गीता की गणना प्रस्थानत्रय (उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता) में की जाती है। इसमें अर्जुनविषादयोग, सांख्ययोग, कर्मयोग , ज्ञानकर्मसन्न्यासयोग, कर्मसन्न्यासयोग, आत्मसंयमयोग, ज्ञानविज्ञानयोग, अक्षरब्रह्मयोग, राजविद्याराजगुह्ययोग,विभूतियोग, विश्वरुपदर्शनयोग, भक्तियोग, क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग, गुणत्रयविभागयोग, पुरुषोत्तमयोग, दैवासुरसम्पद्विभागयोग, श्रद्धात्रयविभागयोग और मोक्षसन्न्यासयोग नामक अठारह अध्याय है। ज्ञानयोग, कर्मयोग, ध्यानयोग, भक्तियोग बुद्धियोग आदि का जगह–जगह प्रयोग होने के बावजूद सांख्य और कर्म निष्ठा का विभिन्न स्थलों पर इसका क्या वास्तविक अर्थ है। इसका विवरण प्रस्तूत आलेख में दिया गया है।

शब्द कुंजी– ज्ञानयोग, कर्मयोग, ध्यानयोग, भक्तियोग बुद्धियोग ।

प्रस्तावना – धातुपाठ में (1) युज् समाधौ दिवादिगण आत्मनेपद समाधिश्चित्तवृत्तिनिरोध:(2) युजिर् योगे रुधादिगण (3) युज् संयमने चुरादिगण उभयपद प्राप्त होते हैं।

युज् धातु में घञ प्रत्यय एवं कुत्व से योग शब्द निष्पन्न होता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया कि–

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति।[2]

ध्यानयोग के परिप्रेक्ष्य में कहा गया कि ध्यानयोग के अभ्यास का नाम योगसेवा है। उस ध्यानयोग का अभ्यास करते करते जब चित्त एकमात्र परमात्मामें ही भलीभाँति स्थित हो जाता है तब वह निरुद्ध कहलाता है। जिस समय योगी का चित्त परमात्मा के स्वरुप में सब प्रकार निरुद्ध हो जाता है उसी समय उसका चित्त संसार से सर्वथा उपरत हो जाता है। यद्यपि लोकदृष्टि में उसका चित्त समाधि के समय संसार से उपरत और व्यवहारकाल में संसार का चिंतन करता हुआ सा प्रतीत होता है किन्तु वास्तव में उसका संसार से कुछ भी संबंध नहीं रहता यही उसके जाना है।

तं विद्याद्दु:खसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिण्ण्चेतसा।।[3]
न च मत्स्थानि भूतापि पष्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थे ममात्मा भूतभावन:।।[4]

यहाँ युज संयमने अर्थ लिया गया है क्योकि सबके उत्पादक और सबमें व्याप्त रहते हुए तथा सबका धारण पोषण करते हुए भी सबसे सर्वथा निर्लिप्त रहने की जो अद्भुत प्रभावमयी शक्ति है जो ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी में हो ही नहीं सकती उसी को यहाँ ऐश्वरम् योगम् इन पदों द्वारा प्रतिपादन किया गया है। इसी को श्रीमद्भागवद में का गया है कि जब तक संपूर्ण प्राणियो में मेरा भाव (सब कुछ परमात्मा ही है) ऐसा वास्तविक भाव न होने लगे तब तक इस प्रकार मन और शरीर की सभी वृत्तियों से मेरी उपासना करता रहे।

युजिर् योगे अर्थ में

योगस्थ: कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धयसिद्धयो: समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।[5]

इसकी व्याख्या करते हुए श्रीशंकराचार्य कहते हैं कि हे धनंजय! योग में स्थित होकर केवल ईश्वर के लिये कर्म कर। उसमें भी ईश्वर मेरे पर प्रसन्न हो जाय – इस कामना को छोडकर कर्म कर। फलतृष्णारहित पुरुष के द्वारा कर्म किये जाने पर अन्त:करण की शुद्धि से उत्पन्न होनेवाली ज्ञानप्राप्ति तो सिद्धि है और उससे श्रेयप्राप्ति का न होना असिद्धि है ऐसी सिद्धि– असिद्धि में सम होकर कर्म कर। इसी को समता योग कहा गया है।

आगे फिर कहा गया है कि बुद्धियोग की अपेक्षा सकामकर्म अत्यन्त निकृष्ट हैं तथा कर्मों में योग ही कुशलता है।[6] कर्मयोग में कर्म करणसापेक्ष है पर योग करण निरपेक्ष है। अत: कर्मयोग करणनिरपेक्ष विवेकप्रधान साधन है। गीता में कर्मयोग के लिये तीन शब्द मिलते हैं–बुद्धि, योग और बुद्धियोग। कर्मयोग में व्यवसायात्मिका बुद्धि की प्रधानता होने से इसको बुद्धि कहा गया है तथा विवेकपूर्ण त्याग की प्रधानता होने से इसे योग या बुद्धियोग कहा गया है। ध्यानयोग के विषय में कहा गया कि जिसमें दुखों के संयोग का ही वियोग है उसी को योग कहते हैं। योग में मन की और कर्मयोग में विवके की प्रधानता होती है। योग की प्राप्ति कैसे होती है?इसके लिये बताया गया कि–

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि।।[7]

अर्जुन जब श्रीकृष्ण से सांख्ययोग और कर्मयोग इन दोनों में श्रेष्ठता विषयक प्रष्न करते हैं तो श्रीकृष्ण कहते हैं दोनों में कर्मयोग श्रेष्ठ है लेकिन पाँचवें अध्याय में फिर कहते हैं कि–

यत्सांख्यै: प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च य: पश्यति स पश्यति।[8]
श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि।[9]
बुद्धि युक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योग: कर्मसु कौशलम् ।।[10]

गीता में जहाँ कहीं योग शब्द प्रयुक्त है उपमें उपर्युक्त तीनों में एक अर्थ की मुख्यता और शेष दो अर्थो की गौणता है। युजिर् योगे वाले योग शब्द में समता (संबंध) की मुख्यता है पर समता आने पर स्थिरता और सामर्थ्य स्वयमेव आ जाती है है। युज् समाधौ वाले योग शब्द में स्थिरता की मुख्यता है पर स्थिरता आने पर समता और सामर्थ्य स्वत: आ जाती है। युज् संयमने वाले योग शब्द में सामर्थ्य की मुख्यता है पर सामर्थ्य आने पर समता और स्थिरता भी स्वत: आ जाती है।

पातंजल योग दर्शन में चित्तवृत्तियों के निरोध को 'योग' कहा गया है और उस योग का परिणाम है द्रष्टा के स्वरुप मे स्थित हो जाना । इस प्रकार पातंजलयोगदर्शन में योग का जो फल बताया गया है। उसी को गीता में योग कहा गया है। गीता चित्तवृत्तियों से सर्वथा सम्बन्ध–विच्छेदपूर्वक स्वत:सिद्ध सम–स्वरुप में स्वाभाविक स्थिति को योग कहती है। उस समता में स्थिति (नित्ययोग) होने पर फिर कभी उससे वियोग नहीं होता। वृत्तियो का निरोध होने पर तो निर्विकल्प अवस्था होती है,पर समता में स्थिति होने पर निर्विकल्प बोध होता है। निर्विकल्प बोध अवस्थातीत और संपूर्ण अवस्थाओं का प्रकाशक है। समता (नित्ययोग) का अनुभव कराने के लिये गीता में तीन योगमार्गो का वर्णन मिलता है। कर्मयोग–, ज्ञानयोग और भक्तियोग। कर्मयोग में रति कर्तव्य में होती है कर्मयोग की यह रति अन्त में आत्मरति मे परिणत हो जाती है। –

स्वे स्वे कर्मण्यभिरत: संसिद्धिं लभते नर:।
स्वकर्मनिरत: सिद्धं यथा विन्दति तच्छृणु।।[11]

ज्ञानयोग में उसी प्रेम को आत्मरति कहते है–

योऽन्त:सुखोऽन्तरारास्तथान्तर्ज्योतितेव य:।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति।।[12]

भक्तियोग में उसी को भगवद्रति कहते हैं–

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्त: परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुश्यन्ति च रमन्ति च।।[13]

जिस कर्मयोग में भक्ति के संस्कार है उसकी यह रति भगवद्रति में परिणत हो जाती है। कर्मयोग की यह रति अन्त में आत्मरति में परिणत हो जाती है।

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मा ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मत:।।[14]

इसी को श्रीमद्भागवत में कहा गयाकि–

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्याऽस्तिकुत्रचित्।[15]

स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों का संसार के साथ अभिन्न संबंध है। अत: इन तीनों को दूसरों की सेवा में लगा दें तो यह कर्मयोग है। स्वयं इनसे असंग होकर अपने स्वरुप में स्थित हो जाय तो यह ज्ञानयोग है और स्वयं भगवान के समर्पित हो जाय तो यह भक्तियोग है। श्रीमद्भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय में सांखेग की दृष्टि में अर्जुन को युद्ध के लिये प्रोत्साहित करके सकाम कर्मो की हीनता और निष्काम कर्मो की श्रेष्ठता बतलाकर स्थिरबुद्धि के लक्षण साधन और फल के पश्चात तीसरे अध्याय में सांख्य और कर्मयोग–दो निष्ठाओं का वर्णन है–

लोकेऽस्मिन्द्विधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।।[16]

इसे ही श्रीमद्भगवद्गीता 7/5 में प्रकृति के परा– अपरा, पन्द्रहवें अध्याय 15/16 में क्षर और अक्षर कहा गया है। सभी शास्त्रों में भगवान को प्राप्त करने के तीन प्रधान मार्ग बतलाये गये हैं लेकिन श्रीमद्भगवद्गीता में दो निष्ठाएँ क्यों? क्योकि शास्त्रों में कर्म और ज्ञान के अतिरिक्त जो उपासना (भक्ति) का प्रकरण है वह भक्ति इन्ही दो निष्ठाओं में अन्तर्भूत हो जाती है। जब अपने को परमात्मा से अभिन्न मानकर भक्ति की जाती है तब वह सांख्यनिष्ठाके अन्तर्गत आ जाती है और भेददृष्टि से की जाती है तब वह योगनिष्ठाके अन्तर्गत मानी जाती है। यद्यपि तेरहवें अध्याय के चौबीसवें श्लोक में ध्यानयोग,सांख्ययोग,और कर्मयोग के द्वारा परमात्मा की प्राप्ति बतलायी गयी है–

ध्यायेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मनमात्मना।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे।।[17]

तथापि जो ध्यान अभेदृष्टि से किया जाता है वह सांख्यनिष्ठा के अन्तर्गत है और जो भेदृष्टि से किया जाता है योगनिष्ठा के अन्तर्गत है।

श्रीमद्भगवद्गीता में योग की दो परिभाषाएं दी है–(1) समत्वं योग उच्यते 2/48 (2) तं विद्याद्दुखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् 6/23 समता में स्थिति होने पर संसार के संयोग का वियोग हो जाता है और संसार के संयोग का वियोग होने पर समता में स्थिति हो जाती है पहले तं विद्याद्दुखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् फिर समत्वं योग उच्यते की स्थिति होती है। छठे अध्याय में श्रीकृष्ण अर्जुन को 'योगी बनने का परामर्श देते है। क्योंकि सकामभाववाले तपस्वियों ज्ञानियों और कर्मियों से योगी श्रेष्ठ होता है।[18]

बारहवें अध्याय में कहा गया है कि–

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानंविशिश्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागगस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्।।[19]

उपसंहार– इसतरह सांख्ययोग और कर्मयोग में ही सभी योग सन्निविष्ट है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. महाभारत भीष्मपर्व 43/1
2. श्रीमद्भगवद्गीता 6/20
3. पातंजलयोगदर्शन 6/23
4. श्रीमद्भगवद्गीता 9/4
5. श्रीमद्भगवद्गीता 2/48
6. श्रीमद्भगवद्गीता 2/50
7. श्रीमद्भगवद्गीता 2/53
8. श्रीमद्भगवद्गीता 5/5
9. श्रीमद्भगवद्गीता 2/53

10. श्रीमद्भगवद्गीता 2/50
11. श्रीमद्भगवद्गीता 18/45
12. श्रीमद्भगवद्गीता 5/24
13. श्रीमद्भगवद्गीता 13/9
14. श्रीमद्भगवद्गीता 6/17
15. श्रीमद्भगवद् 11/ 20/ 6
16. श्रीमद्भागवद्गीता 3/3
17. श्रीमद्भगवद्गीता 13/24
18. श्रीमद्भगवद्गीता 6/42
19. श्रीमद्भगवद्गीता 12/12

****